किस क़ानून के मुहाफ़िज़ को कैसा होना चाहिए

हुज्जतुल इस्लाम वलमुस्लिमीन मौलाना सै० हसन नक़वी साहब क़िब्ला
अनुवादकः सैय्यद सुफ़यान अहमद नदवी

क़ानून उसी वक़्त तक सही क़ायम रह सकता है जब कि क़ानून का ज़िम्मेदार क़ानून को नाफ़िज़ करने में ग़लती न करे। अगर क़ानून ठीक है लेकिन जिसने ये क़ानून बनाया है वह इस क़ानून पर अमल करने में और दूसरों से अमल कराने में ग़लती करे तो क़ानून के मक़सद पर असर पड़ेगा। किसी भी सिस्टम के तैयार करने वाले का मक़सद अपनी चाहत के हिसाब से अमल कराना होता है और जिन लोगों को वह ज़िम्मेदार बनाता है पहले उनकी सलाहियत की जाँच-पड़ताल कर लेता है, किरदार की मज़बूती का बहुत अच्छी तरह से जायज़ा ले लेता है। ताकि ग़लतियाँ सिस्टम के मक़सद को ख़राब न कर सकें जहाँ ज़रा भी वह ज़िम्मेदार क़ानून की ज़िन्दगी में कोई हलका सा भी दाग़ देखता है वहाँ अपने क़ानून को उसके हाथ से निकाल लेता है क्योंकि कानून लगाने वाले की ग़लतियों से ऐसे-ऐसे बड़े नुक़सान हो जाते हैं जिनकी भरपाई मुमकिन नहीं होती।

क़ानून के ज़िम्मेदार की ग़लती से पूरा निज़ाम ग़लत समझा जाने लगता है अगर क़ानून लगाने वाले ने ग़लती की और अपनी उस ग़लती को अमली तौर से सबके सामने पेश कर दिया, उसकी बातों को क़ानून की ज़बान और उसके कामों को क़ानून बनाने वाले की चाहत और उसके किरदार को क़ानून के हिसाब से ही समझा जाता है इसलिए जानते हुए भी उसकी ग़लती उसी तरह क़ानून का हिस्सा समझी जायेगी जिस तरह उसके अच्छे कामों की अच्छाई अच्छे क़ानून का सुबूत समझी जाती है इसलिए उसकी ग़लती क़ानून की ग़लती बन जायेगी इसके बाद फिर दो बड़े नुक़सान और भी होंगे एक तो ये कि अगर किसी क़ानून के सही होने की जानकारी हो गई और क़ानून लगाने वाले की ग़लती का एहसास हो गया तो क़ानून बनाने वाले की नज़र से एतेबार उठ जायेगा। क्योंकि जब उसने अपने क़ानून का ऐसे शख़्स को ज़िम्मेदार बनाया जो ग़लतियाँ करता है तो या तो ख़ुद क़ानून बनाने वाले की ही चाहत थी कि क़ानून की वह सही हालत बाक़ी न रहे? तो ये नामुमकिन है। हर क़ानून बनाने वाले की चाहत फ़ितरत के हिसाब से यही होती है कि उसके क़ानून पर बिल्कुल सही-सही अमल हो इसलिए ऐसे शख़्स को जो ग़लतियाँ करता है क़ानून का ज़िम्मेदार बनाना कैसे ठीक है? ये तो क़ानून बनाने वाले की नज़र की बड़ी ग़लती होगी दूसरे ये कि अगर क़ानून का ज़िम्मेदार ग़लती करेगा तो क़ानून का मक़सद पानी में बह जायेगा इसलिए कि क़ानून बनाने का मक़सद ये था कि उस क़ानून पर अमल करने से ग़लतियों से बचाव हो, काम सही और बराबरी वाले हों लेकिन जब क़ानून लागू करने वाला ख़ुद ग़लती करेगा तो ज़ाहिर है कि हर क़ानून के ज़िम्मेदार उस ग़लती को सही समझने पर मजबूर होंगे जिसके बाद उस ग़लती पर अमल करना भी यक़ीनी है तो क़ानून का वह मक़सद कि काम सही हों, ख़त्म होकर बजाए सही होने के उसका नतीज ये होगा कि क़ानून के मक़सद में ग़लती होगी। और ये क़ानून और क़ानून बनाने वाले की चाहत

हरगिज़ नहीं है इसलिए मालूम हुआ कि क़ानून लागू करने वाले और उसके ज़िम्मेदार के किरदार को बेदाग़ होना चाहिए जिस तरह असल क़ानून में ग़लती मक़सद तक पहुँचने से रोकने वाली होती है, उसी तरह क़ानून बनाने वाले और क़ानून के ज़िम्मेदार की ग़लती भी रास्ते का पत्थर बन जाती है जिस तरह क़ानून बनाने वाले की ज़रा सी भी ग़लती पूरी इन्सानियत के सिस्टम को उलट-पलट कर बर्बादी में फंसा सकती है, इसी तरह क़ानून के ज़िम्मेदार की ग़लती भी पूरे इन्सानियत के ढाँचे को बिखेर कर फ़ना के घाट उतार सकती है।

और यही वजहें हैं जो घरों में बिगाड़, शहरों में वीरानी, मुल्क में आपसी जंगें होती हैं जहाँ कभी फ़ितरत के बताये हुए ज़िन्दगी के उसूल, तहज़ीब के उसूल और क़ानून शहरों के क़ानून में ग़लती हुई, वहाँ इन्सानों का आपस में भिड़ना ज़रूरी होता है। ख़ालिक़े फ़ितरत ने कुछ समाजी उसूल इन्सान की ज़िन्दगी से जोड़ रखे हैं जिन पर अमल करने का अकेला ज़िम्मेदार ख़ुद इन्सान है जहाँ उन उसूलों पर अमल करने में कोई एक क़दम भी नाबराबरी का उठा वहाँ हंगामा खड़ा हो गया।

अगर समाजी इतिहास पर नज़र की जाए तो इतने इख़्तेलाफ़ मिलेंगे जो लिखे नहीं जा सकते। एक वक़्त वह था जब इन्सान इज्तेमाई ज़िन्दगी से बिल्कुल ही अनजान था ये इन्सान की तहज़ीब के बचपन का ज़माना था इसके बाद ही इन्सान को अपनी ज़रूरतों की बुनियाद पर एक साथ काम करने पर मजबूर होना पड़ा जिसके बाद इज्तेमाई ज़िन्दगी की बुनियाद पड़ी यहीं से अपने बनाये हुए गिरोही क़ानून बनने लगे। एक-एक गिरोह, एक-एक क़बीले के नाम से याद किया जाने लगा और हर गिरोह का एक सरदार क़बीले के नाम से पहचाना जाने लगा ये इज्तेमाई ज़िन्दगी की शुरुआत थी जो भी सरदार बनाया गया उसके हाथ में क़बीले के सभी अन्दुरूनी और बाहरी मामले दे दिये गये लेकिन जो सरदार बना वह अपने को कोई बड़ी ऊँची शख़्सियत समझने लगा जिसके बाद वह क़ानून जो क़बीले के सरदार के हवाले थे उनमें जायज़ और नाजाएज़ इस्तेमाल होने लगे, दरबार के क़रीबी लोंगों और मानने वालों को ख़ास आसानियाँ मिलने लगीं जिससे उस शख़्सी हुकूमत की सूरत में कुछ बदलाव पैदा होने लगे जिसने आगे बढ़कर शहंशाहियत की सूरत इख़्तियार कर ली, लेकिन बाद में उसमें भी वही ग़लतियाँ पैदा होने लगीं।

अब से चौदह सौ साल पहले इन्सान ने अपने क़रीब एक बहुत ही बेहतरीन उसूल ईजाद किया और वह है जमहूरियत। जमहूरियत भी शख़्सियत ही की तरह थी एक बार चुने जाने के बाद सारी ज़िन्दगी हुकूमत का हक़दार बना देना। लेकिन जल्दी ही इसमें भी वही क़ानून के ज़िम्मेदार की ख़ास नज़र आने वाली ग़लतियाँ थीं जिन्होंने जीतने की हवस की शक्ल इख़्तियार की जिसके बाद लड़ाइयाँ इतनी बढ़ गयीं कि मुल्क के फ़िक्र करने वालों को इस जमहूरियत की शक्ल बदल देनी पड़ी। यहाँ तक कि धीरे-धीरे जमहूरियत फिर मिट गयी। और वही पुरानी शख़्सी हुकूमतों का दौर दौरा हो गया एक लम्बे ज़माने तक तलवार के ज़ोर पर ये हुकूमतें चलती रहीं तरक़्क़ी भी गिरावट भी हुई अमन भी रहा जंग भी हुई, यहाँ तक कि फिर उसी पुराने ख़याल ने सर उठाया और जमहूरी निज़ाम चल निकला और आज न जाने कौन-कौन से सैकड़ों उसूल बनाये जाते हैं लेकिन नाकाम होकर टूट जाते हैं और फिर दूसरे उसूल पैदा होते हैं।

कुछ तो उन्हीं उसूलों की ग़लतियाँ है लेकिन ज़ियादा क़ानून और उसके ज़िम्मेदार लोगों की ग़लतियाँ हैं इस जमहूरी ज़माने में कुछ क़ानून बहुत ही अच्छे और कामयाब हो जाते हैं लेकिन फिर वही क़ानून बेकार और नाकाम बन जाते हैं इसमें क़ानून की ख़राबी के साथ-साथ क़ानून की हिफ़ाज़त करने वालों का भी हाथ होता है जब जमहूर ने हमको क़ानून का ज़िम्मेदार बना दिया तो अब

हम क़ानून को अपनी बपौती समझने लगते हैं जिसके बाद ऐसे-ऐसे बचकाना क़दम उठाते हैं कि आख़िर में वह क़ानून ही मुर्दा समझा जाने लगता है। असल राज़ ये है कि हम, क़ानून की हिफ़ाज़त करने वाला ऐसे को बना देते हैं जो माद्दियात में घिरा हुआ है दिमाग़ में शहंशाहियत बसी हुई है। ज़्यादा से ज़्यादा ख़ुद फ़ायदा उठाने का भूत सवार है। अपने क़रीबी ख़ानदान वाले, मिलने वाले, शहर वाले, अफ़राद के लिए क़ानून में सहूलतें बरती जाती हैं जब दूसरे लोग देखते हैं कि हक़दार होने के बाद भी हम महरूम हैं तो वह किसी ऐसे को चुनते हैं जिससे उनको ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा पहुँच सके।

इसलिए मुल्क में लड़ाइयाँ होने लगती हैं क़त्ल, ख़ून और फ़साद की वारदातें होती हैं ये सिर्फ़ क़ानून की हिफ़ाज़त करने वाले की ग़लती के ख़तरनाक नतीजे होते हैं लेकिन अगर यही क़ानून की हिफ़ाज़त करने वाला अपनी ज़िम्मेदारी को पूरी तरह से महसूस करे, दिली चाहतों और बेजान ख़यालों से हटकर एक सही हिफ़ाज़त करने वाला साबित हो, तो उसकी हर बात और काम में ऐसा वज़न पैदा हो जाए जिसके बाद फिर किसी इख़्तेलाफ़ की जगह ही न पैदा हो और इसके बाद भी जो मुख़ालेफ़त करेंगे वह जुर्म करने वाले गिरोह, या जानवरों की किसी भीड़ में गिने जायेंगे।

इसलिए मालूम हुआ कि क़ानून की हिफ़ाज़त करने वाले को अपनी पूरी ज़िम्मेदारी का एहसास होना चाहिए क़ानून को लागू करने के मामले में सभी ज़ाती ताल्लुक़ात को छोड़ देना चाहिए जब हिफ़ाज़त करने वाला ऐसा होगा तब क़ानून बनाने वाले की चाहत के हिसाब से अमल हो सकेगा।



बक़िया...... रोज़े के फ़ायदे

गुज़रते वक़्त नहीं लड़खड़ायेंगे और वह आसानी से उस पर से गुज़र जायेगा हक़ीक़त ये है कि साल भर में ये एक महीना ऐसा है जिसमें इस्लामी तालीमात पर अमल करने का मौक़ा मिलता है और मुसलमान को उसके ज़ाती और जमाअती, घरेलू और शहरी ज़िन्दगी के फ़र्ज़ पूरे करने और उनका एहसास करने की बड़ी तरबियत हासिल होती है। रोज़े का असली मक़सद इन्सान के जिस्म और रूह का सुधार है। इस सुधार के लिए हमें इस पाक महीने में दो बड़े रास्ते दिखाये गये हैं। एक क़ुरआन पाक और दूसरे रोज़ा। रोज़ा हमारी रूह को जगाता और हमारे सोये हुए एहसास को ज़िन्दगी देता है और हमें इस क़ाबिल बनाता है कि हम क़ुरआन पाक की हिदायत की नेमत को हासिल कर सकें, उसके नूर से अपनी रूह और दिल और दिमाग़ के अन्धेरों को दूर करें और हम में उस भाइचारगी और हमदर्दी का शौक़ पैदा हो जाए जो इस्लामी ज़िन्दगी का एक बड़ा निशान है। रोज़ा जिस तरह ग़रीबों पर फ़र्ज़ है उसी तरह अमीरों पर भी फ़र्ज़ है। जिस तरह आम लोगों पर उसी तरह हुक्मरानों पर उसका रखना ज़रूरी है सिवाए उन लोगों के जो शरीअत में अलग रखे गये हैं। रोज़ा रखने से इन्सान में जो सब्र और बर्दाश्त करने की ताक़त पैदा होती है वह ज़िन्दगी के हर रास्ते में काम आती है और अच्छे-अच्छे खानों से पेट भर कर हम जिस आपसी हमदर्दी के जज़्बे और दूसरों की भूख के एहसास से अनजान रहते हैं ख़ुद हमारी भूख की सख़्ती उस जज़्बे को सामने लाती है और रोज़ा बराबर एक महीने तक हमारे इसी जज़्बे को बढ़ाता रहता है। हम मस्जिदों में जाते हैं। जमाअत की नमाज़ों में शरीक होते हैं, आपस में मिलजुल कर और साथ बैठकर रोज़ा इफ़्तार करते हैं, एक दूसरे के हालात की ख़बर लेने का मौक़ा मिलता है, जिसके बाद दिल में फ़ितरी तौर पर ख़िदमत और अच्छा सुलूक करने की चाहत पैदा हो जाती है।

ये कितनी बड़ी सीख है मुसीबतों पर सब्र करने की और प्यास को बर्दाश्त करने की! और आपस में एक दूसरे के दुख दर्द का एहसास करने की! अमन और आराम से रहने वाले शहरी हों या जंग के मैदान के भूखे सिपाही हों हर मुसलमान को दूसरे मुसलमान की भूख और तकलीफ़ का एहसास हो जाता है और उसमें क़ुर्बानी और हमदर्दी की वह उमंग पैदा हो जाती है जो किसी दूसरे रास्ते से मुमकिन नहीं हो सकती।

